मधुशाला

सन् 1933-34 में लिखित

अग्रणी कवि बच्चन की कविता का आरंभ तीसरे दशक के मध्य 'मधु' अथवा मदिरा के इर्द-गिर्द हुआ और 'मधुशाला' से आरंभ कर 'मधुबाला' और 'मधुकलश' एक-एक वर्ष के अंतर से प्रकाशित हुए। ये बहुत लोकप्रिय हुए और प्रथम 'मधुशाला' ने तो धूम ही मचा दी। यह दरअसल हिन्दी साहित्य की आत्मा का ही अंग बन गई है और कालजयी रचनाओं की श्रेणी में आ खड़ी हुई है।

इन कविताओं की रचना के समय कवि की आयु 27-28 वर्ष की थी, अतः स्वाभाविक है कि ये संग्रह यौवन के रस और ज्वार से भरपूर हैं। स्वयं बच्चन ने इन सबको एक साथ पढ़ने का आग्रह किया है।

कवि ने कहा है : "आज मदिरा लाया हूं—जिसे पीकर भविष्यत् के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दुख दूर हो जाते हैं..., आज जीवन की मदिरा, जो हमें विवश होकर पीनी पड़ी है, कितनी कड़वी है। ले, पान कर और इस मद के उन्माद में अपने को, अपने दुख को, भूल जा।"

मधुशाला के सर्वप्रथम कवि-सम्मेलन के सभापति का संस्मरण

(पन्द्रहवें संस्करण से)

['मधुशाला' का पन्द्रहवाँ संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इस अवसर पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मैं उन सब लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ जिन्होंने मेरी इस कृति की लोकप्रियता बढ़ाने में सहायता दी है। ग्यारहवें संस्करण के साथ पहली बार मैंने एक छोटी-सी भूमिका दी थी। बारहवें-तेहरवें और चौदहवें संस्करण के साथ 'मधुशाला के पच्चीस वर्ष' शीर्षक से श्री अक्षय कुमार जैन (संपादक, नवभारत टाइम्स) का एक संस्मरण 1933 के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उस कवि-सम्मेलन के सम्बन्ध में दिया गया था, जिसमें 'मधुशाला' सर्वप्रथम पढ़ी गई थी, और जिसमें वे विद्यार्थी-श्रोता के रूप में उपस्थित थे।

इस नए संस्करण के साथ उस कवि-सम्मेलन के सभापति, प्रोफेसर मनोरजंन प्रसाद सिन्हा का एक संस्मरण दे रहा हूँ। आशा है, इससे पाठकों का मनोरजंन होगा।

–बच्चन]

मेरे छोटे भाई परम प्रिय बच्चन ने एक छोटी-सी इच्छा व्यक्त की, अपने एक पत्र में। लिखा उसने मेरे पास :

"जो 'मधुशाला' आपके सभापतित्व में सर्वप्रथम सर्वसाधारण के सामने पढ़ी गई थी उसके तेरह संस्करण हो चुके हैं। मेरी यह इच्छा है कि उसके सम्बन्ध में आपका एक संस्मरण किसी संस्करण के साथ दूँ।"

'मधुशाला' के ग्यारहवें संस्करण की भूमिका में बच्चन ने लिखा है कि "लगभग एक लाख लोग उसे पढ़ चुके होंगे। मैंने कब समझा था कि मेरा यह कहना सच ही हो जाएगा :

कभी न कण भर खाली होगा
लाख पिएँ, दो लाख पिएँ।"

'मधुशाला' के प्रेमियों की ओर से मैंने भी अपनी बात उनके सामने

रख दी थी—अपनी तथाकथित पैरोडी में, जिसे 'मधुशाला' की प्रथम पैरोडी होने का गौरव प्राप्त हुआ था :

लाख पिएँ दो लाख पिएँ
पर कभी नहीं थकनेवाला;

अगर पिलाने का दम है तो
जारी रख यह मधुशाला।

मुझे याद है कि मेरी उस रचना से लोगों का काफी मनोरजंन हुआ था और मेरा विश्वास है कि आज भी 'मधुशाला' के पाठकों का उससे कम मनोरंजन न होगा। उन दिनों जब मैं कवि-सम्मेलनों में जाया करता था तो अक्सर लोगों की फर्माइश हुआ करती थी, ''मनोरंजन जी, 'मधुशाला' की पैरोडी सुनाइए !''

वही थी मेरी प्रथम प्रतिक्रिया और आज भी मेरी वही प्रतिक्रिया है। मैंने बच्चन की पैरोडी नहीं की थी—पैरोडी की थी 'मधुशाला' की। मेरी मधुशाला वस्तुवादी मधुशाला है—बच्चन की रहस्यवादी मधुशाला नहीं।मधुशाला के ये दो पहलू हैं, और इस ख्याल से कि उस दूसरे पहलू की ओर भी लोगों का ध्यान रहे, मेरी उस रचना की सृष्टि हुई जो मेरी विडम्बना ही थी।

'मधुशाला' के प्रेमियों के लिए मैं अपनी पैरोडी की कुछ रुबाइयों को भी उद्धृत कर देता हूँ, इस विश्वास के साथ कि इससे उनका भी उतना ही मनोरंजन होगा जितना कि उनके पूर्व-श्रोताओं का हुआ था।

भूल गया तस्बीह नमाजी,
पंडित भूल गया माला,
चला दौर जब पैमानों का,
मग्न हुआ पीनेवाला।

आज नशीली-सी कविता ने
सबको ही बदहोश किया,
कवि बनकर महफ़िल में आई
चलती-फिरती मधुशाला।

रूपसि, तूने सबके ऊपर
कुछ अजीब जादू डाला
नहीं खुमारी मिटती कहते
दो बस प्याले पर प्याला,

कहाँ पड़े हैं, किधर जा रहे
है इसकी परवाह नहीं,
यही मनाते हैं, इनकी
आबाद रहे यह मधुशाला।

भर-भर कर देता जा, साक़ी
मैं कर दूँगा दीवाला,
अजब शराबी से तेरा भी
आज पड़ा आकर पाला,

लाख पिएँ, दो लाख पिएँ,
पर कभी नहीं थकनेवाला,
अगर पिलाने का दम है तो
जारी रख यह मधुशाला।

मुझे धुँधली-सी स्मृति है उस कवि-सम्मेलन की, जिसमें पहली बार बच्चन ने अपनी 'मधुशाला' सुनाई थी—दिसम्बर, सन् 1933, शिवाजी हाल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। जहाँ तक याद है कवि-सम्मेलन के साथ-साथ हिन्दी गल्प-सम्मेलन भी था। कवि-सम्मेलन के सभापति थे हमारे गुरुवर हरिऔधजी, किन्तु उनके न आने के कारण अथवा आकर चले जाने के कारण (ठीक याद नहीं) मुझे ही सभापति का आसन ग्रहण करना पड़ा था। उन दिनों मैं वहीं अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक था किन्तु हिन्दी में रुचि होने के कारण पाँच सवारों में मेरी भी गिनती हुआ करती थी। और कई कवियों ने उस सम्मेलन में अपनी रचनाएँ सुनाई थीं, किन्तु दो नवयुवक कवियों की रचनाएँ लोगों ने विशेष रुचि के साथ सुनीं। एक थे नरेन्द्र शर्मा जो उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय में एम॰ए॰ के विद्यार्थी थे और दूसरे थे बच्चन जो उन दिनों प्रयाग के ही किसी विद्यालय में अध्यापन करते थे।

दिन बच्चन का ही था। मस्ती के साथ झूम-झूमकर जब उसने अपने सुललित कण्ठ से 'मधुशाला' को सस्वर सुनाना शुरू किया तो सभी श्रोता झूम उठे। नवयुवक विद्यार्थी ही नहीं, बड़े-बूढ़े भी झूम उठे। स्वयं मेरे ऊपर भी उसका नशा छा गया था। तब यह सुध कहाँ थी कि उसके दूसरे पहलू की ओर देखता अथवा उसकी पैरोडी करता। बस, स्वर-लहरी में लहराना, मद की मस्ती में झूमना और हर चौथी पंक्ति के अन्त में जब 'मधुशाला' का-उच्चारण हो तो बरबस गायक के साथ स्वयं भी उसकी आवृत्ति करना; और यह बात प्रायः प्रत्येक श्रोता के साथ थी।

कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ। सब अपने-अपने आवास-स्थान की ओर चले—'मधुशाला' की धुन में, 'मधुशाला' की लय पर 'मधुशाला' गुनगुनाते। मैं भी चला अपने क्वार्टर की ओर उसी की धुन गुनगुनाता। और तब आया अपने सामने 'मधुशाला' का दूसरा पहलू। और तभी वे पंक्तियाँ भी आईं जिन्हें पहले उद्धृत कर चुका हूँ। शाम को सम्मेलन समाप्त हुआ और रात-भर मैं उसी धुन में रहा—सुबह तक खुमारी रही। इस प्रकार वह पैरोडी बनी।

मैं एक पैरोडिस्ट अथवा विडम्बक अवश्य हूँ, किन्तु कवि नहीं हूँ—ऐसी ही मेरी मान्यता है। कवि हृदय-प्रधान होता है, मैं मस्तिष्क-प्रधान हूँ। कवि भाव-प्रधान होता है, मैं बुद्धि-प्रधान हूँ। भावुक अवश्य हूँ किन्तु भावुकता में बह नहीं जाता। स्वान्तःसुखाय के साथ लोकहित का भी ख्याल हो आता है। भावों से प्रेरित अवश्य होता हूँ किन्तु तुक बैठाता हूँ। ललित कण्ठ का वरदान मुझे भी मिला है, इससे कवि-सम्मेलन में मेरी रचनाएँ भी लोग चाव से सुना करते हैं, किन्तु एक युग बीत गया मुझे कवि-सम्मेलनों से किनाराकशी किए हुए। लिखता बराबर, पर कम, रहा हूँ, छपवाता और भी कम रहा हूँ। इसी प्रकार मुद्दत से साहित्यिक समारोहों से मेरा संन्यास-सा ही रहा है। लेकिन आज भी मन-ही-मन अनुभव करता हूँ कि पुरानी बात गई नहीं है।

उस शाम बच्चन को सुनकर नवयुवक पागल हो रहे थे। पागल मैं भी हो रहा था किन्तु वह पागलपन उसी प्रकार का न रहा। यह गिलहरी कुछ दूसरा ही रंग लाई; और वह रंग प्रकट हुआ दूसरे दिन के कवि-सम्मेलन में जो केवल 'मधुशाला' का सम्मेलन था—बच्चन का और मेरा सम्मेलन था—'मधुशाला' का सर्वप्रथम कवि-सम्मेलन—केवल 'मधुशाला' का। बच्चन

ने अपनी अनेकानेक रुबाइयाँ सुनाई थीं और मैंने केवल आठ। बच्चन आदि और अन्त में थे और मैं था मध्य में, इण्टरवल में, जब सुनाते-सुनाते वे थक-से गए थे और शीशे के गिलास में सादे पानी से गले की खुश्की मिटा रहे थे।

बात ऐसी हुई कि पहले दिन बच्चन ने जब 'मधुशाला' सुनाई थी तब सम्मेलन में उतने विद्यार्थी न थे। जब उसकी शोहरत फैली और अनेकानेक कण्ठों से छात्रावासों में तथा इधर-उधर 'मधुशाला' की मादक पंक्तियाँ निकलने लगीं—हवा में थिरकने लगीं—तो जिन लोगों ने न सुना था वे भी पागल हो गए—जिन लोगों ने सुना था वे तो पागल थे ही, बस सभी का आग्रह हुआ कि एक बार फिर बच्चन जी का कविता-पाठ हो—केवल बच्चनजी का—केवल 'मधुशाला' का। किन्तु किसी भी सम्मेलन के लिए प्रिंसिपल की अनुमति आवश्यक थी। विद्यार्थी प्रिंसिपल ध्रुव के यहाँ पहुँचे। ध्रुवजी ने कहा कि यदि कोई प्रोफेसर उस सम्मेलन का सभापतित्व करना स्वीकार करें तो उन्हें आपत्ति नहीं होगी।

लड़के मेरे पास आए और मैंने तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी क्योंकि तब तक मेरी भी आठ रुबाइयाँ तैयार हो चुकी थीं और सर्वसाधारण के समक्ष आने को मचल रही थीं। आर्ट्स कालेज के उस हाल में, जो कालेज-भवन की दूसरी मंजिल पर ठीक जीने के पास अवस्थित है, जमकर सभा हुई, कहीं तिल-भर जगह नहीं थी। कमरे का कोना-कोना तो भरा ही हुआ था, बाहर दरवाजों के सामने भी अनेकानेक विद्यार्थी थे।

मैंने सभापति का आसन ग्रहण किया और बच्चनजी तथा उनकी कविता का परिचय देते हुए यह भी कह दिया कि मेरे ऊपर भी 'मधुशाला' का असर हुआ है और जहाँ बच्चनजी ने 108 रुबाइयाँ लिखी हैं वहाँ मैंने भी आठ रुबाइयाँ लिख डाली हैं जिन्हें मौका मिलने पर सुना दूँगा।

बच्चनजी ने कविता-पाठ शुरू किया। लड़के झूमने लगे। बच्चन कविता सुनाते जाते थे और रह-रहकर खुश्की मिटाने के लिए पानी पीते जाते थे। सभी आत्मविभोर-से थे, किन्तु आखिर इण्टरवल की आवश्यकता हुई ही, और तब मैंने अपनी चीज पेश की जो शराब के साथ के 'चिखने' के समान थी—महज़ ज़ायका बदलने के लिए। लोगों का काफी मनोरंजन हुआ। बच्चनजी भी दाद दे रहे थे, लेकिन ऐसा प्रतीत हुआ मानो कहीं-कहीं उन्हें

रुचिकर प्रतीत न होता था। पैरोडी की परेशानी यही है कि प्रायः लोग उसे रचना की पैरोडी न समझकर व्यक्ति की पैरोडी समझ बैठते हैं। यही विडम्बना है।

किन्तु विडम्बक भी बाज नहीं आते। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के पैरोडी-प्रकरण में इस प्रकार लिखा भी है (स्मृति से लिख रहा हूँ) : 'The first parodist was born with the first poet.'

'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,
विडम्बक वहीं पास ही खड़ा, छेड़ता होगा उल्टी तान।'

मैं बच्चन का पहला पैरोडिस्ट हूँ—इसका मुझे गौरव है। केवल 'मधुशाला' ही नहीं, उसकी अनेकानेक रचनाओं की पैरोडी मेरे द्वारा हुई है किन्तु सभी मैंने छपवाईं नहीं। 'मधुशाला' और 'मधु का प्याला' की पैरोडी मेरे 'गुनगुन' में प्रकाशित हुई थी—सन् 1937 में। 'मधुगीत' का शीर्षक मैंने दिया था उन दोनों रचनाओं को। परिचय में लिखा था :

''प्रयाग के प्रतिभाशाली कवि श्रीयुत बच्चनजी ने हिन्दी में 'मधुशाला' की रचना करके एक नई ही धारा बहाई है, जो हमारे साहित्य के लिए ही नहीं, बल्कि हमारी इधर की संस्कृति के लिए भी बिल्कुल नई है। किन्तु 'निरंकुशाः कवयः' के न्याय से हम कवि पर यह हुकूमत नहीं चला सकते कि अमुक विषय पर लिखो और अमुक विषय पर न लिखो। फिर भी, हमें उसकी खरी और तीखी आलोचना करने का उतना ही हक है जितना उसे कविता लिखने का। इसी से जब पहले-पहल मैंने बच्चनजी की 'मधुशाला' उनके मुँह से सुनी तब मुझे यह देखकर आश्चर्य नहीं हुआ कि नवयुवक विद्यार्थी उन पर लट्टू हो गए हैं। मुझे भी वह चीज़ कम पसन्द न आई, किन्तु मैंने देखा कि उसका दूसरा पहलू—और बच्चनजी माफ़ करें, सच्चा और असली पहलू—भी दे देना आवश्यक है। इसी से मैंने भी अपनी मधुशाला की आठ रुबाइयाँ लिखीं और बच्चनजी को सुनाईं। 'मधु का प्याला' भी मुझे सुनने में अच्छा मालूम हुआ, किन्तु उसकी फ़िलासफ़ी मुझे जँची नहीं, इसी से मई, 1936 के मासिक 'विश्वमित्र' में मैंने उसकी विडम्बना छपवाई थी, जिसमें तुलनात्मक विवेचना के लिए बच्चनजी की कविता भी साथ ही दे दी थी। उन दोनों रचनाओं को मिलाकर पढ़ने पर पाठकों को

दोनों दृष्टिकोणों का भेद स्पष्ट हो जाएगा।''

बच्चनजी तथा उनकी कविताएँ मेरी सदैव से प्रिय रही हैं। बच्चन को बराबर मैंने छोटे भाई की तरह प्यार किया है और उन्होंने भी अपने मनोरंजन दादा को आदर के साथ ही याद किया है। किन्तु जहाँ मुझे 'पगध्वनि' सरीखी कविताएँ हर तरफ से अच्छी जँची, वहाँ 'मधुशाला' सम्बन्धी कविताएँ उनकी फ़िलासफ़ी के कारण उतनी श्रेयस्कर प्रतीत न हुईं। बच्चनजी के प्याले की गहराई तक नवयुवक नहीं पहुँच सकते। वे प्याले की सतह तक ही उतरकर रह जाते हैं—ऐसी मेरी धारणा है। इसी से एक बार मैंने 'पगध्वनि' की पैरोडी के जरिए ही बच्चन की कविता पर कुछ लिखने का प्रयास किया था। वह मेरी नोटबुक ही कहीं गुम हो गई। फिर भी जो पंक्तियाँ याद हैं, उन्हें लिखकर इस संस्मरण को समाप्त करता हूँ :

वह कविता मेरी पहचानी,
जिसकी पगध्वनि सुन-सुन पल-पल
सुर-नर-मुनि हो उठते चंचल
अन्तर में मच जाती हलचल,
मैं उस कविता का चिर प्रेमी,
मैं उस कविता का चिर ध्यानी।

मदिरा ले अपनी अरुणाई,
लेकर प्याली की चतुराई,
जिसमें मस्ती भरने आई,
मैं उस कविता से चिर परिचित,
मैं उस कविता का चिर ज्ञानी।

एक का चिरप्रेमी हूँ, तो एक से चिरपरिचित। एक का चिरध्यानी हूँ, तो एक का चिरज्ञानी। उसी में कहीं मैंने पूछा भी है कि ''क्यों मुझको बदहोश बनाता, कह कवि, कह, इसके क्या मानी'' फिर भी अन्त में कहा है मैंने :

भर-भर जाम पिलाता जा तू,
अरे, मस्त हो गाता जा तू,
मधुमय तान सुनाता जा तू,
क्या जाने तू ही दीवाना
है अथवा दुनिया दीवानी।

और अब मालूम होता है, मानो वह भी दीवाना है, दुनिया भी दीवानी है। और कोई दीवाना हो या नहीं, मैं तो दीवाना हूँ ही—बच्चन का दीवाना, उसकी कविता का दीवाना। बच्चन चिरंजीव हो, उसकी कविता अमर हो। उसके साथ ही साथ मेरी भी बच्चन के पाठकों तक रसाई हो जाए :

'ज्यों पलास सँग पान के पहुँचत राजा हाथ।'

—मनोरंजन

पूर्व प्राध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
तथा पूर्व-प्राचार्य, राजेन्द्र कालेज, छपरा।

देवघर,
वैद्यनाथ धाम
18.9.60

सम्बोधन

मेरे मादक,

उस दिन उमर खैयाम के हृदय के भावना-प्रसूनों को अपनी भाषा के तार में पिरोकर तेरे चरणों में चढ़ा चुका हूँ। तुझे उन्हें देखकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता हुई इस बात की कि तेरा एक भक्त तेरी आज्ञा का पालन कर सका, पर मेरा हृदय तो सन्तुष्ट न हुआ। दूसरे की वस्तु अपनी भेंट की डाली में लेकर तेरे मंदिर में जाते समय मेरे मन में कितनी लज्जा थी, इसे तू क्या जाने ! यदि उन प्रसूनों के लिए तेरी आज्ञा न होती और मैं अपनी इच्छा से उन्हें लेकर तेरे पास आने का प्रयत्न करता तो संभवतः मैं मार्ग में ही गड़ जाता—तेरे मंदिर तक पहुँच ही न पाता, पर तेरी आज्ञा और तेरी प्रसन्नता के विचार ने मुझे तेरे समीप ला उपस्थित किया, यद्यपि मैं तुझसे यह कहने में कोई हानि नहीं समझता कि भक्त भगवान् के चरणों में कोई भेंट उनकी प्रसन्नता के विचार से नहीं चढ़ाता। दीन-हीन, अकिंचन भक्त यह विचार ही कब अपने मन में ला सकता है कि वह भगवान् के चरणों में कोई ऐसी वस्तु उपस्थित कर सकता है, जिससे वे प्रसन्न हो सकें। वह तो भगवान् के चरणों में अपनी भेंट अपने हृदय की संतुष्टि के लिए ही चढ़ाता है। भगवान् के चरणों में वह कुछ अपना रखकर अपने ही हृदय का भार हल्का करता है—वह बोझ उतारता है। उस दिन दूसरे के प्रसून जो मैंने तेरे चरणों में अर्पित कर दिए, उससे मेरे हृदय का भार तो हल्का न हुआ, मेरे हृदय का बोझ तो न उतरा, मेरे हृदय को तो संतुष्टि न मिली।

मेरी इन बातों को सुनकर, सोचता हूँ, तुझे ध्यान आएगा कि मैं कितना स्वार्थी हूँ, जो तेरी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता नहीं समझता। प्रसन्नता तो मुझे बड़ी हुई थी। अपने आराध्य देव के अधरों पर प्रसन्नता की रेखा

देखकर कौन भक्त आनन्द की चरम सीमा नहीं छू लेता, कौन भक्त आनन्दातिरेक से पागल नहीं हो उठता ! पर भक्त-हृदय आनन्द और प्रसन्नता के लिए ही तो आकुल-विह्वल नहीं रहता। प्रसन्नता तो आत्म-चेतना की एक अनुभूति है। भक्त तो आत्मसमर्पण करके वह विस्मृति ढूँढ़ता है, जो हर्ष और विषाद से परे है। अरे, यह अपनेपन का भार ! अरे, इसे उतार फेंकने की आतुरता ! अरे, इस महान् त्याग में भी स्वार्थ की सत्ता ! मानव-जीवन कितना अपूर्ण है ! हमारे महान् त्याग में भी हमारा महान् स्वार्थ है। संसृति की नींव इसी त्याग-स्वार्थ की महान् भावना पर स्थित है।

बादल अपना अपनापन अगणित बूँदों में, बूँदें अपना अपनापन जलधाराओं और नदियों में, और नदियाँ अपना अपनापन समुद्र में खोने को आतुर हैं, और वह समुद्र भी तो हर समय विक्षुब्ध रहकर किसी ऐसे की खोज कर रहा है जिसके चरणों में वह अपनी सम्पूर्ण जलराशि अर्घ्य-रूप में अर्पित करके रिक्त हो जाए। पृथ्वी अपना अपनापन अगणित वृक्ष-बेलि-पौधों में, वृक्ष-बेलि-पौधे अपना अपनापन पुष्प और कलियों में, पुष्प और कलियाँ अपना अपनापन—अपना सौरभ—समीर में मिश्रित करने को आकुल हैं, और वह समीर भी तो निरंतर चंचल रहकर किसी ऐसे को ढूँढ़ रही है जिसके अंचल को एक बार—केवल एक बार—लहराकर वह उसी में विलुप्त हो जाए। पतंगा अपना अपनापन दीपक के आगे, दीपक अपना अपनापन दिवस के आगे, दिवस अपना अपनापन रजनी के आगे, और रजनी—शशि-तारक-मणि-मंडित रजनी-अपना अपनापन सूर्य के आगे अर्पण करने को आकुल है; और वह सूर्य भी तो आदि-सृष्टि से किसी ऐसी महज्ज्योति के चरणों को प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रहा है जिसकी एक बार आरती उतारकर वह बुझ जाए।

इसी प्रकार वादक अपना अपनापन स्वरों में प्रकट करके यह चाहता है कि वे किसी के कानों में क्षणभर गूँजकर, विस्तृत गगन में क्षीण होकर विलीन हो जाएँ। चित्रकार अपना अपनापन रेखाओं तथा रंगों में प्रकट करके यह इच्छा करता है कि वे किसी की आँखों में पल-भर प्रतिबिंबित होकर, धुँधले बनकर तिरोहित हो जाएँ। शिल्पकार अपना अपनापन पाषाण-प्रतिमाओं में अभिव्यक्त करके यह अभिलाषा करता है कि वे किसी की मृदुल हथेली का क्षणिक स्पर्श प्राप्त कर खंड-खंड होकर धरा पर बिखर जाएँ। और,

कवि अपना अपनापन सजीव शब्द-पदों में व्यंजित करके चाहता है कि वे किसी के हृदय को शीघ्रता से छूकर संसार के सघन कोलाहल में छिप जाएँ—खो जाएँ।

हाँ, तो इस स्वार्थी मानव की, जिसमें से मैं भी एक हूँ, चरम अभिलाषा आत्मानंद नहीं, आत्मसमर्पण है। इसका सौभाग्य इसे उस दिन प्राप्त न हो सका। इसी कारण इतनी जल्दी आज यह कुछ अपनापन लेकर तेरे चरणों में फिर उपस्थित हुआ है। इस अनिवार्य स्वार्थ के लिए मैं क्षमा की भिक्षा माँगता हूँ। मुझे विश्वास है कि मैं निराश नहीं लौटूँगा। कभी नहीं लौटा।

आज मदिरा लाया हूँ—मदिरा, जिसे पीकर भविष्यत् के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुःख दूर हो जाते हैं, जिसे पान कर मान-अपमानों का ध्यान नहीं रह जाता और गौरव का गर्व लुप्त हो जाता है, जिसे ढालकर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीड़ा और कठिनता को कुछ नहीं समझता और जिसे चखकर मनुष्य श्रम, संकट, संताप सभी को भूल जाता है। आह, जीवन की मदिरा जो हमें विवश होकर पीनी पड़ी है, कितनी कड़वी है ! कितनी ! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दुःखदायिनी चेतना को विस्मृति के गर्त में गिराएगी तथा प्रबल दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर, कुटिल आघातों से रक्षा करेगी; क्षीण, क्षुद्र, क्षण-भंगुर, दुर्बल मानव के पास जग-जीवन की समस्त आधि-व्याधियों की यही एक महौषधि है। मेरा हृदय कहता है कि आज इसकी तुझे आवश्यकता है। ले, इसे पान कर; और इस मद के उन्माद में अपने को, अपने दुःख को, अपने दुःखद समय को और समय के कठिन चक्र को भूल जा। ले, इसे पी, और इस मधु से अपना जीवन नवोल्लास, नूतन स्फूर्ति और नवल उमंगों से भर ! उफ, किसे ज्ञात है कि यह दूसरों को मदोन्मत्त कर देने वाला स्वयं कितने अवसादों का पुञ्ज है। किसे मालूम है कि दूसरों को शीतलता प्रदान करनेवाला स्वयं कितनी भीषण ज्वाला में दग्ध हुआ करता है।

यह मेरे हृदय की मदिरा है। मत समझ, तू अकेले जलता है। तू जलता है, पर प्रभाव मुझ पर पड़ता है। तू जलता है, मैं गलता हूँ, तू तपता है, मैं पिघलता हूँ। मैं भी शीतल मधु की खोज में आया था, पर तूने मुझे अपना हृदय दिया, हृदय की ज्वाला दी। यह मेरे हृदय की हाला तेरी ज्वाला

से गल-पिघलकर प्रवाहित हो उठी है। ले, इसे पीकर अपने हृदय की अग्नि को शांत कर। जो हृदय कल मधु का प्यासा था, वही आज प्यास बुझाने वाला मधु हो गया है।

कवि का हृदय केवल कवि का हृदय नहीं है। उसकी हृदय-गोद में त्रिकाल और त्रिभुवन सोते रहते हैं, सृष्टि दुधमुँही बच्ची के समान क्रीड़ा करती है, और प्रलय नटखट बालक के समान उत्पात मचाता है। उसका हृदयांगण गगन के गान, समीरण के हास और सागर के रोदन से प्रतिध्वनित हुआ करता है। उसके हृदय-मंदिर में जन्म-जीवन-मरण अविरल गति से नृत्य किया करते हैं। इस कारण कवि के हृदय के गलने के साथ ही आज समस्त विश्व मादक हाला से परिप्लावित हो उठा है। जल और थल, गगन और पवन, सिन्धु और वसुन्धरा, स्वर्ग और नरक, जड़ और चेतन, निशा और दिवस, वन और उपवन, सर और सरिता, मिलन और विरह, प्रणय और संघर्ष, आशा और निराशा, जन्म और जीवन, काल और कर्म–सभी वस्तुएँ, जिनका अस्तित्व इस विश्व में है, आज हाला-प्याला-मधुशाला-मय आभासित हो रही हैं।

मेरे प्यारे, देख, अखिल प्रकृति मधुशाला बनकर झूम रही है। आ, तुझे पुरुष बनाकर मैं मायारूपिणी चंचला साक़ीबाला बनूँ। मैं अपने हाथों से प्याला भर-भरकर तेरे अधरों से लगाऊँ और तू अनन्तकाल तक अनन्त पिपासा से इसे पीता चला जाए। न मैं पिलाने से थकूँ और न तू पीने से।

....

भगवन् क्षमा, क्षमा, क्षमा। अरे, अपने इस मृत-मृत्तिका-पात्र को तेरे ज्योतिर्मय अधरों तक ले आने का दुस्साहस! मेरा अभिमान क्षमा कर, मेरे हाथ काँप रहे हैं, मेरा पात्र हिल रहा है; मेरी मदिरा गिरी जाती है। अरे, पद भी प्रकंपित हो रहे हैं; शरीर के अंग-अंग के जोड़ खुल-से रहे हैं, रोम-रोम सिहर रहा है। अरे, मैं गिरी...गि...री।

....

मेरी मदिरा तेरे चरणों में फिर भी चढ़ गई। मैं संतुष्ट हूँ। भक्त की मदिरा–विनम्र भक्त की मदिरा–भगवान् के अधरों पर नहीं, चरणों में ही चढ़नी उचित है। पर ऊपर देखती हूँ। यह क्या। तेरी आँखों में यह

मतवालापन कैसा ? उन्मत्तता कैसी ? मस्ती कैसी ? तेरे अधर हिल रहे हैं। तू मुस्करा क्यों रहा है ? क्या तू कुछ कह रहा है ? क्या यही कि—

पीकर मदिरा मस्त हुआ तो
प्यार किया क्या मदिरा से !

क्या तू मेरी मदिरापान कराने की अभिलाषा से ही प्रमत्त हो उठा ? धन्य तू और धन्य मैं !

पर तू मुझे उन मद-भरे नयनों से न देख, मेरा जी न जाने कैसा होने लगता है। ले, मैं आँखें मूँद रही हूँ।

ओह, उन मतवाली आँखों की ओर न देखा ही जाता है और न उनको बिना देखे रहा ही जाता है, उन्हें एक बार फिर से देख लूँ।

पर, अरे, अरे, वे मादक नयन किधर गए ? वह मादक दृश्य किधर गया ? उसे कहाँ ढूँढूँ ? पर क्यों ?

....

मैं उन्हें न ढूँढूँगी। उन मादक नयनों की एक चितवन मुझे अनन्त काल तक उन्मत्त रखेगी। भक्त को चाहिए सिंधु की तृष्णा और बिन्दु से सन्तोष।

तेरी मतवाली आँखों की हाला सदा मेरी पलकों के प्याले में छलका करे और जो मुझे देखे, वह तेरी मदिरा से मस्त हो उठे।

प्रयाग,
27 अगस्त, 1933*

तेरे मदिर नयनों के
निरंतर ध्यान में
मैं

* इस समय तक 'रुबाइयात उमरखैयाम' की समता पर 'मधुशाला' में 75 रुबाइयाँ थीं, दिसम्बर 1933 तक जब इनमें से कुछ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं, इनकी संख्या 108 तक पहुँची और '34 तक, जब ये संग्रह-रूप में छपने को अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में दी गईं (गो छपी नहीं), अपने वर्तमान रूप में आईं। क्रम आदि में बहुत से परिवर्तन किए गए।

मधुशाला

मधु वाता ऋतायते
मधु क्षरन्ति सिन्धवः
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।
मधु नक्तमुतोषसो
मधुमत् पार्थिवं रजः
मधु द्यौरस्तु नः पिता।
मधुमान्नो वनस्पतिः
मधुमां अस्तु सूर्यः
माध्वीर्गावो भवन्तु नः
मधु मधु मधु
तृप्यध्वम् तृप्यध्वम् तृप्यध्वम्।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, 90वाँ सूक्त)

मधुशाला

मृदु भावों के अंगूरों की
आज बना लाया हाला,
प्रियतम, अपने ही हाथों से
आज पिलाऊँगा प्याला;
पहले भोग लगा लूँ तुझको
फिर प्रसाद जग पाएगा;
सबसे पहले तेरा स्वागत
करती मेरी मधुशाला। 1

प्यास तुझे तो, विश्व तपाकर
पूर्ण निकालूँगा हाला,
एक पाँव से साक़ी बनकर
नाचूँगा लेकर प्याला;
जीवन की मधुता तो तेरे
ऊपर कब का वार चुका
आज निछावर कर दूँगा मैं
तुझ पर जग की मधुशाला। 2



प्रियतम, तू मेरी हाला है,
मैं तेरा प्यासा प्याला,
अपने को मुझमें भरकर तू
बनता है पीनेवाला;
मैं तुझको छक छलका करता,
मस्त मुझे पी तू होता;
एक दूसरे को हम दोनों
आज परस्पर मधुशाला। 3

भावुकता अंगूर लता से
खींच कल्पना की हाला,
कवि साक़ी बनकर आया है
भरकर कविता का प्याला;
कभी न कण भर खाली होगा,
लाख पिएँ, दो लाख पिएँ!
पाठक गण हैं पीनेवाले,
पुस्तक मेरी मधुशाला। 4

मधुर भावनाओं की सुमधुर
नित्य बनाता हूँ हाला
भरता हूँ इस मधु से अपने
अंतर का प्याला प्याला;
उठा कल्पना के हाथों से
स्वयं उसे पी जाता हूँ;
अपने ही में हूँ मैं साक़ी,
पीनेवाला, मधुशाला। 5



मदिरालय जाने को घर से
चलता है पीनेवाला,
'किस पथ से जाऊँ' असमंजस
में है वह भोलाभाला;
अलग-अलग पथ बतलाते सब
पर मैं यह बतलाता हूँ...
'राह पकड़ तू एक चला चल,
पा जाएगा मधुशाला । 6

चलने ही चलने में कितना
जीवन, हाय, बिता डाला !
'दूर अभी है', पर, कहता है
हर पथ बतलाने वाला;
हिम्मत है न बढ़ूँ आगे को
साहस है न—फिरूँ पीछे;
किंकर्तव्यविमूढ़ मुझे कर
दूर खड़ी है मधुशाला । 7

मुख से तू अविरत कहता जा
मधु, मदिरा, मादक हाला,
हाथों में अनुभव करता जा
एक ललित कल्पित प्याला,
ध्यान किए जा मन में सुमधुर,
सुखकर, सुन्दर साक़ी का;
और बढ़ा चल, पथिक, न तुझको
दूर लगेगी मधुशाला । 8



मदिरा पीने की अभिलाषा
ही बन जाए जब हाला
अधरों की आतुरता में ही
जब आभासित हो प्याला,
बने ध्यान ही करते-करते
जब साकी साकार, सखे,
रहे न हाला, प्याला, साक़ी,
तुझे मिलेगी मधुशाला। 9

सुन, कलकल, छलछल मधु-
घट से गिरती प्यालों में हाला,
सुन, रुनझुन रुनझुन चल
वितरण करती मधु साक़ीबाला,
बस आ पहुँचे, दूर नहीं कुछ,
चार क़दम अब चलना है;
चहक रहे, सुन, पीनेवाले,
महक रही, ले, मधुशाला। 10

जलतरंग बजता, जब चुंबन
करता प्याले को प्याला,
वीणा झंकृत होती, चलती
जब रुनझुन साक़ीबाला,
डाँट-डपट मधुविक्रेता की
ध्वनित पखावज करती है;
मधुरव से मधु की मादकता
और बढ़ाती मधुशाला। 11



मेहँदी-रंजित मृदुल हथेली
पर माणिक मधु का प्याला,
अंगूरी अवगुंठन डाले
स्वर्ण-वर्ण साक़ीबाला,
पाग बैंजनी, जामा नीला
डाट डटे पीनेवाले;
इन्द्रधनुष से होड़ लगाती।
आज रँगीली मधुशाला। 12

हाथों में आने से पहले
नाज़ दिखाएगा प्याला,
अधरों पर आने से पहले
अदा दिखाएगी हाला,
बहुतेरे इन्कार करेगा
साक़ी आने से पहले
पथिक, न घबरा जाना, पहले
मान करेगी मधुशाला। 13

लाल सुरा की धार लपट-सी
कह न इसे देना ज्वाला,
फेनिल मदिरा है, मत इसको
कह देना उर का छाला,
दर्द नशा है इस मदिरा का
विगत स्मृतियाँ साक़ी हैं;
पीड़ा में आनन्द जिसे हो,
आए मेरी मधुशाला। 14

जगती की शीतल हाला-सी
पथिक, नहीं मेरी हाला,
जगती के ठंडे प्याले-सा,
पथिक, नहीं मेरा प्याला,
ज्वाल-सुरा जलते प्याले में
दग्ध हृदय की कविता है;
जलने से भयभीत न जो हो,
आए मेरी मधुशाला । 15

बहती हाला देखी, देखो
लपट उठाती अब हाला,
देखो प्याला अब छूते ही
होंठ जला देनेवाला;
'होंठ नहीं, सब देह दहे, पर
पीने को दो बूँद मिले'—
ऐसे मधु के दीवानों को
आज बुलाती मधुशाला । 16

धर्म-ग्रंथ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला,
मंदिर, मस्जिद, गिरजे—सबको
तोड़ चुका जो मतवाला,
पंडित, मोमिन, पादरियों के
फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला । 17

लालायित अधरों से जिसने,
हाय, नहीं चूमी हाला,
हर्ष-विकंपित कर से जिसने,
हा, न छुआ मधु का प्याला,
हाथ पकड़ लज्जित साक़ी का
पास नहीं जिसने खींचा,
व्यर्थ सुखा डाली जीवन की
उसने मधुमय मधुशाला । 18

बने पुजारी प्रेमी साक़ी,
गंगाजल पावन हाला,
रहे फेरता अविरल गति से
मधु के प्यालों की माला,
'और लिये जा, और पिए जा'—
इसी मंत्र का जाप करे,
मैं शिव की प्रतिमा बन बैठूँ ।
मंदिर हो यह मधुशाला । 19

बजी न मंदिर में घड़ियाली,
चढ़ी न प्रतिमा पर माला,
बैठा अपने भवन मुअज़्ज़िन
देकर मस्जिद में ताला,
लुटे ख़ज़ाने नरपतियों के
गिरीं गढ़ों की दीवारें;
रहें मुबारक पीनेवाले,
खुली रहे यह मधुशाला । 20

बड़े-बड़े परिवार मिटे यों,
एक न हो रोनेवाला,
हो जाएँ सुनसान महल वे,
जहाँ थिरकतीं सुरबाला,
राज्य उलट जाएँ, भूपों की
भाग्य-सुलक्ष्मी सो जाए;
जमे रहेंगे पीनेवाले,
जगा करेगी मधुशाला। 21

सब मिट जाएँ, बना रहेगा
सुन्दर साक़ी, यम काला,
सूखें सब रस, बने रहेंगे,
किन्तु, हलाहल औ' हाला,
धूमधाम औ' चहल-पहल के
स्थान सभी सुनसान बनें,
जगा करेगा अविरत मरघट,
जगा करेगी मधुशाला। 22

बुरा सदा कहलाया जग में
बाँका, मद-चंचल प्याला,
छैल-छबीला, रसिया साक़ी,
अलबेला पीनेवाला;
पटे कहाँ से, मधुशाला औ',
जग की जोड़ी ठीक नहीं—
जग जर्जर प्रतिदिन, प्रतिक्षण, पर
नित्य नवेली मधुशाला। 23



बिना पिये जो मधुशाला को
बुरा कहे, वह मतवाला,
पी लेने पर तो उसके मुँह
पर पड़ जाएगा ताला;
दास-द्रोहियों दोनों में है
जीत सुरा की, प्याले की,
विश्वविजयिनी बनकर जग में
आई मेरी मधुशाला। 24

हरा-भरा रहता मदिरालय,
जग पर पड़ जाए पाला,
वहाँ मुहर्रम का तम छाए,
यहाँ होलिका की ज्वाला;
स्वर्ग लोक से सीधी उतरी
वसुधा पर, दुख क्या जाने;
पढ़े मर्सिया दुनिया सारी,
ईद मनाती मधुशाला। 25

एक बरस में एक बार ही
जलती होली की ज्वाला,
एक बार ही लगती बाज़ी,
जलती दीपों की माला;
दुनियावालो, किन्तु, किसी दिन
आ मदिरालय में देखो,
दिन को होली, रात दिवाली,
रोज़ मनाती मधुशाला। 26

नहीं जानता कौन, मनुज
आया बनकर पीनेवाला,
कौन अपरिचित उस साक़ी से,
जिसने दूध पिला पाला;
जीवन पाकर मानव पीकर
मस्त रहे, इस कारण ही
जग में आकर सबसे पहले
पाई उसने मधुशाला । 27

बनी रहें अंगूर लताएँ
जिनसे मिलती है हाला,
बनी रहे वह मिट्टी जिससे
बनता है मधु का प्याला,
बनी रहे वह मदिर पिपासा
तृप्त न जो होना जाने,
बने रहें ये पीने वाले,
बनी रहे यह मधुशाला । 28

सकुशल समझो मुझको, सकुशल
रहती यदि साक़ीबाला;
मंगल और अमंगल समझे
मस्ती में क्या मतवाला;
मित्रो, मेरी क्षेम न पूछो
आकर, पर मधुशाला की,
कहा करो 'जय राम' न मिलकर,
कहा करो जय मधुशाला' । 29



सूर्य बने मधु का विक्रेता,
सिंधु बने घट, जल हाला,
बादल बन-बन आए साक़ी,
भूमि बने मधु का प्याला,
झड़ी लगाकर बरसे मदिरा
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम कर,
बेलि, विटप, तृण बन मैं पीऊँ,
वर्षा ऋतु हो मधुशाला । 30

तारक मणियों से सज्जित नभ
बन जाए मधु का प्याला,
सीधा करके भर दी जाए
उसमें सागर-जल हाला,
मत्त समीरण साक़ी बनकर
अधरों पर छलका जाए,
फैले हों जो सागर तट-से;
विश्व बने यह मधुशाला । 31

अधरों पर हो कोई भी रस
जिह्वा पर लगती हाला,
भाजन हो कोई हाथों में
लगता रक्खा है प्याला,
हर सूरत साक़ी की सूरत
में परिवर्तित हो जाती,
आँखों के आगे हो कुछ भी,
आँखों में है मधुशाला । 32

पौधे आज बने हैं साक़ी
ले-ले फूलों का प्याला,
भरी हुई है जिनके अन्दर
परिमल-मधु-सुरभित हाला,
माँग-माँगकर भ्रमरों के दल
रस की मदिरा पीते हैं
झूम-झपक मद-झंपित होते,
उपवन क्या है मधुशाला ! 33

प्रति रसाल तरु साक़ी-सा है,
प्रति मंजरिका है प्याला,
छलक रही है जिसके बाहर
मादक सौरभ की हाला,
छक जिसको मतवाली कोयल
कूक रही डाली-डाली
हर मधुऋतु में अमराई में
जग उठती है मधुशाला। 34

मंद झकोरों के प्यालों में
मधुऋतु सौरभ की हाला
भर-भरकर है अनिल पिलाता
बनकर मधु-मद-मतवाला,
हरे-हरे नव पल्लव, तरुगण,
नूतन डालें, वल्लरियाँ
छक-छक, झुक-झुक झूम रही हैं,
मधुवन में है मधुशाला । 35



साक़ी बन आती है प्रातः
जब अरुणा ऊषा-बाला
तारक-मणि-मंडित चादर दे
मोल धरा लेती हाला,
अगणित कर किरणों से जिसको
पी, खग पागल हो गाते;
प्रति प्रभात में पूर्ण प्रकृति में
मुखरित होती मधुशाला । 36

उतर नशा जब उसका जाता,
आती है संध्या बाला,
बड़ी पुरानी, बड़ी नशीली
नित्य ढला जाती हाला;
जीवन के संताप शोक सब
इसको पीकर मिट जाते;
सुरा-सुप्त होते मद-लोभी
जागृत रहती मधुशाला । 37

अंधकार है मधुविक्रेता,
सुन्दर साक़ी, शशिबाला
किरण-किरण में जो छलकाती
जाम जम्हाई का आला,
पीकर जिसको चेतनता खो
लेने लगते हैं झपकी—
तारकदल-से पीनेवाले;
रात नहीं है, मधुशाला । 38

किसी ओर मैं आँखें फेरूँ,
दिखलाई देती हाला,
किसी ओर मैं आँखें फेरूँ,
दिखलाई देता प्याला,
किसी ओर मैं देखूँ, मुझको
दिखलाई देता साक़ी
किसी ओर देखँ, दिखलाई
पड़ती मुझको मधुशाला । 39

साक़ी बनकर मुरली आई
साथ लिए कर में प्याला,
जिनमें वह छलकाती लाई
अधर-सुधा-रस की हाला;
योगिराज कर संगत उसकी
नटवर नागर कहलाए;
देखो कैसों-कैसों को है
नाच नचाती मधुशाला । 40

वादक बन मधु का विक्रेता
लाया सुर-सुमधुर-हाला,
रागिनियाँ बन साक़ी आई
भरकर तारों का प्याला,
विक्रेता के संकेतों पर
दौड़ लयों, आलापों में
पान करातीं श्रोतागण को;
झंकृत वीणा मधुशाला । 41

चित्रकार बन साक़ी आता
लेकर तूली का प्याला
जिसमें भरकर पान कराता
वह बहु रस-रंगी हाला,
मन के चित्र जिसे पी-पीकर
रंग-बिरंगे हो जाते,
चित्रपटी पर नाच रही है
एक मनोहर मधुशाला । 42

घन-श्यामल अंगूर लता से
खिंच-खिंच यह आती हाला,
अरुण-कमल-कोमल कलियों की
प्याली, फूलों का प्याला,
लोल हिलोरें साक़ी बन-बन
माणिक मधु से भर जातीं,
हंस मत्त होते पी-पीकर
मानसरोवर मधुशाला । 43

हिम श्रेणी अंगूर लता-सी
फैली, हिम जल है हाला
चंचल नदियाँ साक़ी बनकर,
भरकर लहरों का प्याला
कोमल कूल-करों में अपने
छलकातीं निशिदिन चलतीं,
पीकर खेत खड़े लहराते,
भारत पावन मधुशाला । 44



धीर सुतों के हृदय-रक्त की
आज बना रक्तिम हाला,
वीर सुतों के वर शीशों का
हाथों में लेकर प्याला,
अति उदार दानी साक़ी है
आज बनी भारतमाता,
स्वतंत्रता है तृषित कालिका,
बलिवेदी है मधुशाला । 45

दुतकारा मस्जिद ने मुझको
कहकर है पीनेवाला,
ठुकराया ठाकुरद्वारे ने
देख हथेली पर प्याला,
कहाँ ठिकाना मिलता जग में
भला अभागे काफिर को
शरणस्थल बनकर न मुझे यदि
अपना लेती मधुशाला । 46

पथिक बना मैं घूम रहा हूँ,
सभी जगह मिलती हाला,
सभी जगह मिल जाता साकी,
सभी जगह मिलता प्याला,
मुझे ठहरने का, हे मित्रो,
कष्ट नहीं कुछ भी होता,
मिले न मंदिर, मिले न मस्जिद,
मिल जाती है मधुशाला । 47



सजें न मस्जिद और नमाज़ी
कहता है अल्लाताला,
सजधजकर, पर, साक़ी आता,
बन ठनकर, पीनेवाला,
शेख, कहाँ तुलना हो सकती
मस्जिद की मदिरालय से
चिर-विधवा है मस्जिद तेरी,
सदा-सुहागिन मधुशाला ! 48

बजी नफ़ीरी और नमाज़ी
भूल गया अल्लाताला,
गाज़ गिरी, पर ध्यान सुरा में
मग्न रहा पीनेवाला;
शेख, बुरा मत मानो इसको,
साफ़ कहूँ तो मस्जिद को
अभी युगों तक सिखलाएगी
ध्यान लगाना मधुशाला ! 49

मुसल्मान औ' हिन्दू हैं दो,
एक, मगर, उनका प्याला,
एक, मगर, उनका मदिरालय,
एक, मगर, उनकी हाला;
दोनों रहते एक न जब तक
मस्जिद-मन्दिर में जाते;
वैर बढ़ाते मस्जिद-मन्दिर
मेल कराती मधुशाला ! 50



कोई भी हो शेख नमाज़ी
या पंडित जपता माला,
वैर भाव चाहे जितना हो
मदिरा से रखनेवाला,
एक बार बस मधुशाला के
आगे से होकर निकले,
देखूँ कैसे थाम न लेती
दामन उसका मधुशाला ! 51

और रसों में स्वाद तभी तक,
दूर जभी तक है हाला,
इतरा लें सब पात्र न जब तक,
आगे आता है प्याला,
कर लें पूजा शेख, पुजारी
तब तक मस्जिद-मन्दिर में
घूँघट का पट खोल न जब तक
झाँक रही है मधुशाला। 52

आज करे परहेज़ जगत, पर
कल पीनी होगी हाला,
आज करे इन्कार जगत पर
कल पीना होगा प्याला;
होने दो पैदा मद का महमूद
जगत में कोई, फिर
जहाँ अभी हैं मन्दिर-मस्जिद
वहाँ बनेगी मधुशाला। 53



यज्ञ-अग्नि-सी धधक रही है
मधु की भट्ठी की ज्वाला,
ऋषि-सा ध्यान लगा बैठा है
हर मदिरा पीने वाला,
मुनि-कन्याओं-सी मधुघट ले
फिरतीं साक़ीबालाएँ,
किसी तपोवन से क्या कम है
मेरी पावन मधुशाला । 54

सोम-सुरा पुरखे पीते थे,
हम कहते उसको हाला,
द्रोण-कलश जिसको कहते थे,
आज वही मधुघट आला;
वेद-विहित यह रस्म न छोड़ो,
वेदों के ठेकेदारो,
युग-युग से है पुजती आई
नई नहीं है मधुशाला । 55

वही वारुणी जो थी सागर
मथकर निकली अब हाला,
रंभा की संतान जगत में
कहलाती 'साक़ीबाला';
देव-अदेव जिसे ले आए,
संत-महंत मिटा देंगे !
किसमें कितना दम-खम, इसको
खूब समझती मधुशाला । 56

 

कभी नहीं सुन पड़ता, 'इसने,
हा, छू दी मेरी हाला',
कभी न कोई कहता, 'उसने
जूठा कर डाला प्याला';
सभी जाति के लोग यहाँ पर
साथ बैठकर पीते हैं;
सौ सुधारकों का करती है
काम अकेली मधुशाला । 57

श्रम, संकट, संताप, सभी तुम
भूला करते पी हाला,
सबक़ बड़ा तुम सीख चुके यदि
सीखा रहना मतवाला;
व्यर्थ बने जाते हो हरिजन,
तुम तो मधुजन ही अच्छे;
ठुकराते हरि-मंदिरवाले,
पलक बिछाती मधुशाला । 58

एक तरह से सबका स्वागत
करती है साक़ीबाला,
अज्ञ-विज्ञ में है क्या अन्तर
हो जाने पर मतवाला,
रंक-राव में भेद हुआ है
कभी नहीं मदिरालय में,
साम्यवाद की प्रथम प्रचारक
है यह मेरी मधुशाला । 59



बार-बार मैंने आगे बढ़,
आज नहीं माँगी हाला,
समझ न लेना इससे मुझको
साधारण पीने वाला,
हो तो लेने दो ऐ साक़ी,
दूर प्रथम संकोचों को;
मेरे ही स्वर से फिर सारी
गूँज उठेगी मधुशाला। 60

कल? कल पर विश्वास किया कब
करता है पीनेवाला
हो सकते कल कर जड़ जिनसे
फिर-फिर आज उठा प्याला,
आज हाथ में था, वह खोया,
कल का कौन भरोसा है;
कल की हो न मुझे मधुशाला
काल कुटिल की मधुशाला। 61

आज मिला अवसर तब फिर क्यों
मैं न छकूँ जी भर हाला,
आज मिला मौका, तब फिर क्यों
ढाल न लूँ जी भर प्याला,
छेड़छाड़ अपने साक़ी से
आज न क्यों जी भर कर लूँ,
एक बार ही तो मिलनी है
जीवन की यह मधुशाला। 62



आज सजीव बना लो, प्रेयसि,
अपने अधरों का प्याला,
भर लो, भर लो, भर लो इसमें
यौवन-मधुरस की हाला,
और लगा मेरे होठों से
भूल हटाना तुम जाओ,
अथक बनूँ मैं पीनेवाला,
खुले प्रणय की मधुशाला । 63

सुमुखि, तुम्हारा सुन्दर मुख ही
मुझको कंचन का प्याला,
छलक रही है जिसमें माणिक-
रूप - मधुर - मादक - हाला,
मैं ही साक़ी बनता, मैं ही
पीनेवाला बनता हूँ,
जहाँ कहीं मिल बैठे हम-तुम
वहीं हो गई मधुशाला । 64

दो दिन ही मधु मुझे पिलाकर
ऊब उठी साक़ीबाला,
भरकर अब खिसका देती है
वह मेरे आगे प्याला,
नाज़, अदा, अंदाज़ों से अब,
हाय, पिलाना दूर हुआ,
अब तो कर देती है केवल
फ़र्ज़-अदाई मधुशाला । 65

छोटे-से जीवन में कितना
प्यार करूँ पी लूँ हाला,
आने के ही साथ जगत में
कहलाया 'जाने वाला',
स्वागत के ही साथ विदा की
होती देखी तैयारी,
बंद लगी होने खुलते ही,
मेरी जीवन-मधुशाला । 66

क्या पीना, निर्द्वन्द्व न जब तक
ढाला प्यालों पर प्याला,
क्या जीना, निश्चिंत न जब तक
साथ रहे साक़ीबाला,
खोने का भय, हाय, लगा है
पाने के सुख के पीछे
मिलने का आनंद न देती
मिलकर के भी मधुशाला । 76

मुझे पिलाने को लाए हो
इतनी थोड़ी-सी हाला !
मुझे दिखाने को लाए हो
एक यही छिछला प्याला !
इतनी पी जाने से अच्छा
सागर की ले प्यास मरूँ;
सिंधु-तृषा दी किसने रचकर
बिंदु बराबर मधुशाला ? 68

क्या कहता है, रह न गई अब
तेरे भाजन में हाला,
क्या कहता है, अब न चलेगी
मादक प्यालों की- माला;
थोड़ी पीकर प्यास बढ़ी तो
शेष नहीं कुछ पीने को;
प्यास बुझाने को बुलवाकर
प्यास बढ़ाती मधुशाला। 69

लिखी भाग्य में जितनी बस
उतनी ही पाएगा हाला,
लिखा भाग्य में जैसा बस
वैसा ही पाएगा प्याला
लाख पटक तू हाथ-पाँव, पर
इससे कब कुछ होने का,
लिखी भाग्य में जो तेरे बस
वही मिलेगी मधुशाला। 70

कर ले, कर ले कंजूसी तू
मुझको देने में हाला,
दे ले, दे ले तू मुझको बस
यह टूटा-फूटा प्याला;
मैं तो सब्र इसी पर करता,
तू पीछे पछताएगी;
जब न रहूँगा मैं, तब मेरी
याद करेगी मधुशाला। 71

ध्यान मान का, अपमानों का
छोड़ दिया जब पी हाला,
गौरव भूला, आया कर में
जब से मिट्टी का प्याला,
साक़ी की अंदाज-भरी
झिड़की में क्या अपमान धरा,
दुनिया भर की ठोकर खाकर
पाई मैंने मधुशाला। 72

क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर दुर्बल
मानव मिट्टी का प्याला,
भरी हुई है जिसके अन्दर
कटु-मधु जीवन की हाला,
मृत्यु बनी है निर्दय साक़ी
अपने शत-शत कर फैला।
काल प्रबल है पीनेवाला;
संसृति है यह मधुशाला। 73

प्याले-सा गढ़ हमें किसी ने
भर दी जीवन की हाला,
नशा न भाया, ढाला हमने
ले-लेकर मधु का प्याला;
जब जीवन का दर्द उभरता
उसे दबाते प्याले से;
जगती के पहले साक़ी से,
जूझ रही है मधुशाला। 74

अपने अंगूरों-से तन में
हमने भर ली है हाला,
क्या कहते हो, शेख, नरक में
हमें तपाएगी ज्वाला,
तब तो मदिरा खूब खिंचेगी
और पिएगा भी कोई,
हमें नरक की ज्वाला में भी
दीख पड़ेगी मधुशाला । 75

यम आएगा लेने जब, तब
खूब चलूँगा पी हाला,
पीड़ा, संकट, कष्ट नरक के
क्या समझेगा मतवाला,
क्रूर, कठोर, कुटिल, कुविचारी
अन्यायी यमराजों के
डंडों की जब मार पड़ेगी,
आड़ करेगी मधुशाला । 76

यदि इन अधरों से दो बातें
प्रेम भरी करती हाला,
यदि इन खाली हाथों का जी
पल भर बहलाता प्याला,
हानि बता, जग, तेरी क्या है,
व्यर्थ मुझे बदनाम न कर;
मेरे टूटे दिल का है बस
एक खिलौना मधुशाला । 77

याद न आए दुखमय जीवन
इससे पी लेता हाला,
जग चिंताओं से रहने को
मुक्त, उठा लेता प्याला,
शौक, साध के और स्वाद के
हेतु पिया जग करता है,
पर मैं वह रोगी हूँ जिसकी
एक दवा है मधुशाला। 78

गिरती जाती है दिन-प्रतिदिन,
प्रणयिनि, प्राणों की हाला,
भग्न हुआ जाता दिन-प्रतिदिन,
सुभगे, मेरा तन-प्याला,
रूठ रहा है मुझसे, रूपसि
दिन-दिन यौवन का साक़ी,
सूख रही है दिन-दिन, सुंदरि,
मेरी जीवन-मधुशाला। 79

यम आएगा साक़ी बनकर
साथ लिए काली हाला,
पी न होश में फिर आएगा
सुरा-विसुध यह मतवाला;
यह अंतिम बेहोशी, अंतिम
साक़ी, अंतिम प्याला है;
पथिक, प्यार से पीना इसको,
फिर न मिलेगी मधुशाला। 80



ढलक रही हो तन के घट से,
संगिनि, जब जीवन-हाला,
पात्र गरल का ले जब अन्तिम
साक़ी हो आनेवाला,
हाथ परस भूले प्याले का,
स्वाद-सुरा जिह्वा भूले,
कानों में तुम कहती रहना
मधुकण, प्याला, मधुशाला । 81

मेरे अधरों पर हो अन्तिम
वस्तु न तुलसी-दल, प्याला,
मेरी जिह्वा पर हो अन्तिम
वस्तु न गंगाजल, हाला,
मेरे शव के पीछे चलने-
वालो, याद इसे रखना—
'राम नाम है सत्य' न कहना,
कहना 'सच्ची मधुशाला' । 82

मेरे शव पर वह रोए, हो
जिसके आँसू में हाला,
आह भरे वह, जो हो सुरभित
मदिरा पीकर मतवाला,
दें मुझको वे कंधा जिनके
पद मद-डगमग होते हों,
और जलूँ उस ठौर, जहाँ पर
कभी रही हो मधुशाला । 83



और चिता पर जाय उँडेला
पात्र न धृत का, पर प्याला
घंट बँधे अंगूर लता में,
नीर न भरकर, भर हाला,
प्राणप्रिये, यदि श्राद्ध करो तुम
मेरा, तो ऐसे करना—
पीनेवालों को बुलवाकर,
खुलवा देना मधुशाला। 84

नाम अगर पूछे कोई तो
कहना बस पीनेवाला,
काम ढालना और ढलाना
सबको मदिरा का प्याला,
जाति, प्रिये, पूछे यदि कोई,
कह देना दीवानों की,
धर्म बताना, प्यालों की ले
माला जपना मधुशाला। 85

ज्ञात हुआ यम आने को है
ले अपनी काली हाला,
पंडित अपनी पोथी भूला,
साधू भूल गया माला,
और पुजारी भूला पूजा,
ज्ञान सभी ज्ञानी भूला,
किन्तु न भूला मरकर के भी
पीनेवाला मधुशाला। 86

यम ले चलता है मुझको तो,
चलने दे लेकर हाला,
चलने दे साक़ी को मेरे
साथ लिए कर में प्याला;
स्वर्ग, नरक या जहाँ कहीं भी
तेरा जी हो लेकर चल;
ठौर सभी हैं एक तरह के
साथ रहे यदि मधुशाला। 87

पाप अगर पीना, समदोषी
तो तीनों—साक़ी बाला,
नित्य पिलानेवाला प्याला,
पी जानेवाली हाला;
साथ इन्हें भी ले चल मेरे
न्याय यही बतलाता है,
क़ैद जहाँ मैं हूँ, की जाए
क़ैद वहीं पर मधुशाला। 88

शांत सकी हो अब तक, साक़ी,
पीकर किस उर की ज्वाला,
'और, और' की रटन लगाता
जाता हर पीनेवाला,
कितनी इच्छाएँ हर जाने-
वाला छोड़ यहाँ जाता!
कितने अरमानों की बनकर
क़ब्र खड़ी है मधुशाला। 89

जो हाला मैं चाह रहा था,
वह न मिली मुझको हाला,
जो प्याला मैं माँग रहा था,
वह न मिला मुझको प्याला,
जिस साक़ी के पीछे मैं था
दीवाना, न मिला साक़ी,
जिसके पीछे मैं था पागल,
हा, न मिली वह मधुशाला । 90

देख रहा हूँ अपने आगे
कब से माणिक-सी हाला,
देख रहा हूँ अपने आगे
कब से कंचन का प्याला,
'बस अब पाया !'— कह-कह
कब से दौड़ रहा इसके पीछे,
किन्तु रही है दूर क्षितिज-सी
मुझसे मेरी मधुशाला । 91

कभी निराशा का तम घिरता,
छिप जाता मधु का प्याला,
छिप जाती मदिरा की आभा,
छिप जाती साक़ीबाला,
कभी उजाला आशा करके
प्याला फिर चमका जाती,
आँखमिचौनी खेल रही है
मुझसे मेरी मधुशाला । 92

'आ आगे' कहकर कर पीछे
कर लेती साक़ीबाला,
होंठ लगाने को कहकर हर
बार हटा लेती प्याला;
नहीं मुझे मालूम कहाँ तक
यह मुझको ले जाएगी,
बढ़ा-बढ़ाकर मुझको आगे,
पीछे हटती मधुशाला। 93

हाथों में आने-आने में, हाय,
फिसल जाता प्याला,
अधरों पर आने-आने में,
हाय, ढलक जाती हाला;
दुनिया वालो, आकर मेरी
किस्मत की खूबी देखो
रह-रह जाती है बस मुझको
मिलते-मिलते मधुशाला। 94

प्राप्य नहीं है तो, हो जाती
लुप्त नहीं फिर क्यों हाला,
प्राप्य नहीं है तो, हो जाता
लुप्त नहीं फिर क्यों प्याला;
दूर न इतनी, हिम्मत हारूँ,
पास न इतनी, पा जाऊँ;
व्यर्थ मुझे दौड़ाती मरु में,
मृगजल बनकर मधुशाला। 95

मिले न, पर, ललचा-ललचा क्यों
आकुल करती है हाला,
मिले न, पर, तरसा-तरसाकर
क्यों तड़पाता है प्याला,
हाय, नियति की विषम लेखनी
मस्तक पर यह खोद गई—
'दूर रहेगी मधु की धारा,
पास रहेगी मधुशाला !' 96

मदिरालय में कब से बैठा
पी न सका अब तक हाला,
यत्न सहित भरता हूँ, कोई
किन्तु उलट देता प्याला;
मानव-बल के आगे निर्बल
भाग्य सुना विद्यालय में,
'भाग्य-प्रबल, मानव निर्बल' का
पाठ पढ़ाती मधुशाला । 97

किस्मत में था खाली खप्पर,
खोज रहा था मैं प्याला;
ढूँढ रहा था मैं मृगनयनी,
किस्मत में थी मृगछाला;
किसने अपना भाग्य समझने
में मुझ-सा धोखा खाया;
किस्मत में था अवघट-मरघट,
ढूँढ रहा था मधुशाला । 98

उस प्याले से प्यार मुझे जो
दूर हथेली से प्याला,
उस हाला से चाव मुझे जो
दूर अधर-मुख से हाला;
प्यार नहीं पा जाने में है,
पाने के अरमानों में !
पा जाता तब, हाय, न इतनी
प्यारी लगती मधुशाला । 99

साक़ी के है पास तनिक-सी
श्री, सुख, संपत्ति की हाला,
सब जग है पीने को आतुर
ले-ले किस्मत का प्याला;
रेल-ठेल कुछ आगे बढ़ते,
बहुतेरे दबकर मरते;
जीवन का संघर्ष नहीं है,
भीड़ भरी है मधुशाला । 100

साक़ी, जब है पास तुम्हारे
इतनी थोड़ी-सी हाला,
क्यों पीने की अभिलाषा से,
करते सबको मतवाला;
हम पिस-पिसकर मरते हैं;
तुम छिप-छिपकर मुसकाते हो;
हाय, हमारी पीड़ा से है
क्रीड़ा करती मधुशाला । 101

साकी, मर-खपकर यदि कोई
आगे कर पाया प्याला,
पी पाया केवल दो बूँदों
से न अधिक तेरी हाला,
जीवन भर का, हाय, परिश्रम
लूट लिया दो बूँदों ने,
भोले मानव को ठगने के
हेतु बनी है मधुशाला। 102

जिसने मुझको प्यासा रक्खा
बनी रहे वह भी हाला,
जिसने जीवन-भर दौड़ाया
बना रहे वह भी प्याला;
मतवालों की जिह्वा से हैं
कभी निकलते शाप नहीं,
दुखी बनाया जिसने मुझको
सुखी रहे वह मधुशाला! 103

नहीं चाहता, आगे बढ़कर
छीनूँ औरों की हाला,
नहीं चाहता, धक्के देकर,
छीनूँ औरों का प्याला
साकी, मेरी ओर न देखो
मुझको तनिक मलाल नहीं,
इतना ही क्या कम आँखों से
देख रहा हूँ मधुशाला! 104



मद, मदिरा, मधु, हाला सुन-सुन
कर ही जब हूँ मतवाला,
क्या गति होगी जब अधरों के
नीचे आएगा प्याला,
साकी मेरे पास न आना
मैं पागल हो जाऊँगा;
प्यासा ही मैं मस्त, मुबारक
हो तुमको ही मधुशाला ! 105

क्या मुझको आवश्यकता है
साक़ी से माँगूँ हाला,
क्या मुझको आवश्यकता है
साक़ी से चाहूँ प्याला,
पीकर मदिरा मस्त हुआ तो
प्यार किया क्या मदिरा से !
मैं तो पागल हो उठता हूँ
सुन लेता यदि मधुशाला । 106

देने को जो मुझे कहा था
दे न सकी मुझको हाला,
देने को जो मुझे कहा था
दे न सका मुझको प्याला;
समझ मनुज की दुर्बलता मैं
कहा नहीं कुछ भी करता,
किंतु स्वयं ही देख मुझे अब
शरमा जाती मधुशाला । 107



एक समय संतुष्ट बहुत था
पा मैं थोड़ी-सी हाला,
भोला-सा था मेरा साक़ी,
छोटा-सा मेरा प्याला;
छोटे-से इस जग की मेरे
स्वर्ग बलाएँ लेता था,
विस्तृत जग में, हाय, गई खो
मेरी नन्हीं मधुशाला! 108

बहुतेरे मदिरालय देखे,
बहुतेरी देखी हाला,
भाँति-भाँति का आया मेरे
हाथों में मधु का प्याला,
एक-एक से बढ़कर, सुन्दर
साक़ी ने सत्कार किया,
जँची न आँखों में, पर, कोई
पहली-जैसी मधुशाला! 109

एक समय छलका करती थी
मेरे अधरों पर हाला,
एक समय झूमा करता था
मेरे हाथों पर प्याला,
एक समय पीनेवाले, साक़ी,
आलिंगन करते थे;
आज बनी हूँ निर्जन मरघट,
एक समय थी मधुशाला! 110

जला हृदय की भट्टी खींची
मैंने आँसू की हाला;
छलछल छलका करता इससे
पल-पल पलकों का प्याला;
आँखें आज बनी हैं साक़ी,
गाल गुलाबी पी होते;
कहो न विरही मुझको, मैं हूँ
चलती-फिरती मधुशाला ! 111

कितनी जल्दी रंग बदलती
है अपना चंचल हाला,
कितनी जल्दी घिसने लगता
हाथों में आकर प्याला,
कितनी जल्दी साक़ी का
आकर्षण घटने लगता है;
प्रात नहीं थी वैसी, जैसी
रात लगी थी मधुशाला । 112

बूँद-बूँद के हेतु कभी
तुझको तरसाएगी हाला,
कभी हाथ से छिन जाएगा
तेरा यह मादक प्याला;
पीनेवाले, साक़ी की मीठी
बातों में मत आना;
मेरे भी गुण यों ही गाती
एक दिवस थी मधुशाला । 113

छोड़ा मैंने पंथ-मतों को
तब कहलाया मतवाला,
चली सुरा मेरा पग धोने
तोड़ा मैंने जब प्याला;
अब मानी मधुशाला मेरे
पीछे-पीछे फिरती है,
क्या कारण? अब छोड़ दिया है
मैंने जाना मधुशाला। 114

यह न समझना, पिया हलाहल
मैंने, जब न मिली हाला,
तब मैंने खप्पर अपनाया
ले सकता था जब प्याला;
जले हृदय को और जलाना
सूझा, मैंने मरघट को
अपनाया जब इन चरणों में
लोट रही थी मधुशाला। 115

कितनी आई और गई पी
इस मदिरालय में हाला,
टूट चुकी अब तक कितने ही
मादक प्यालों की माला,
कितने साक़ी अपना-अपना
काम ख़त्म कर दूर गए,
कितने पीनेवाले आए,
किन्तु वही है मधुशाला। 116



कितने होंठों को रक्खेगी
याद भला मादक हाला,
कितने हाथों को रक्खेगा
याद भला पागल प्याला,
कितनी शक्लों को रक्खेगा
याद भला भोला साकी,
कितने पीनवालों में है
एक अकेली मधुशाला । 117

दर-दर घूम रहा था जब मैं
चिल्लाता– हाला ! हाला !
मुझे न मिलता था मदिरालय,
मुझे न मिलता था प्याला;
मिलन हुआ, पर नहीं मिलन-सुख
लिखा हुआ था क़िस्मत में,
मैं अब जमकर बैठ गया हूँ,
घूम रही है मधुशाला । 118

मैं मदिरालय के अन्दर हूँ,
मेरे हाथों में प्याला,
प्याले में मदिरालय बिंबित
करनेवाली है हाला;
इस उधेड़-बुन में ही मेरा
सारा जीवन बीत गया
मैं मधुशाला के अन्दर या
मेरे अन्दर मधुशाला । 119



किसे नहीं पीने से नाता,
किसे नहीं भाता प्याला;
इस जगती के मदिरालय में
तरह-तरह की है हाला,
अपनी-अपनी इच्छा के
अनुसार सभी पी मदमाते;
एक सभी का मादक साक़ी,
एक सभी की मधुशाला। 120

वह हाला, कर शांत सके जो
मेरे अन्तर की ज्वाला,
जिसमें मैं बिंबित-प्रतिबिंबित
प्रतिपल, वह मेरा प्याला,
मधुशाला वह नहीं, जहाँ पर
मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला। 121

मतवालापन हाला से ले
मैंने तज दी है हाला,
पागलपन लेकर प्याले से
मैंने त्याग दिया प्याला,
साक़ी से मिल, साक़ी में मिल
अपनापन मैं भूल गया,
मिल मधुशाला की मधुता में
भूल गया मैं मधुशाला। 122

मदिरालय के द्वार ठोंकता
किस्मत का छूँछा प्याला,
गहरी, ठंडी साँसें भर-भर
कहता था हर मतवाला,
कितनी थोड़ी-सी यौवन की
हाला, हा, मैं पी पाया !
बंद हो गई कितनी जल्दी
मेरी जीवन-मधुशाला ! 123

कहाँ गया, वह स्वर्गिक साक़ी,
कहाँ गई सुरभित हाला,
कहाँ गया स्वप्निल मदिरालय,
कहाँ गया स्वर्णिम प्याला !
पीनेवालों ने मदिरा का,
मूल्य, हाय, कब पहचाना !
फूट चुका जब मधु का प्याला,
टूट चुकी जब मधुशाला ! 124

अपने युग में सबको अनुपम
ज्ञात हुई अपनी हाला,
अपने युग में सबको अद्भुत
ज्ञात हुआ अपना प्याला,
फिर भी वृद्धों से जब पूछा
एक यही उत्तर पाया—
अब न रहे वे पीनेवाले,
अब न रही वह मधुशाला ! 125



'मय' को करके शुद्ध दिया
अब नाम गया उसको, 'हाला'
'मीना' को 'मधुपात्र' दिया
'साग़र' को नाम गया 'प्याला',
क्यों न मौलवी चौंकें, बिचकें
तिलक-त्रिपुंडी पंडित जी
'मय-महफिल' अब अपना ली है
मैंने करके 'मधुशाला'। 126

कितने मर्म जता जाती है
बार-बार आकर हाला,
कितने भेद बता जाता है,
बार-बार आकर प्याला,
कितने अर्थों को संकेतों
से बतला जाता साक़ी,
फिर भी पीनेवालों को है
एक पहेली मधुशाला। 127

जितनी दिल की गहराई हो
उतना गहरा है प्याला;
जितनी मन की मादकता हो
उतनी मादक है हाला;
जितनी उर की भावुकता हो
उतना सुन्दर साक़ी है,
जितना ही जो रसिक, उसे है
उतनी रसमय मधुशाला। 128

ज़िन अधरों को छुए,
बना दे मस्त उन्हें मेरी हाला;
जिस कर को छू दे, कर दे
विक्षिप्त उसे मेरा प्याला;
आँख चार हों जिसकी मेरे
साक़ी से, दीवाना हो;
पागल बनकर नाचे वह
जो आए मेरी मधुशाला। 129

हर जिह्वा पर देखी ज़ाएगी
मेरी मादक हाला;
हर कर में देखा जाएगा
मेरे साक़ी का प्याला;
हर घर में चर्चा अब होगी
मेरे मधुविक्रेता की;
हर आँगन में गमक उठेगी
मेरी सुरभित मधुशाला। 130

मेरी हाला में सबने
पाई अपनी-अपनी हाला,
मेरे प्याले में सबने
पाया अपना-अपना प्याला,
मेरे साक़ी में सबने
अपना प्यारा साक़ी देखा;
जिसकी जैसी रुचि थी उसने
वैसी देखी मधुशाला। 131

यह मदिरालय के आँसू हैं,
नहीं-नहीं मादक हाला;
यह मदिरालय की आँखें हैं,
नहीं-नहीं मधु का प्याला;
किसी समय की सुखद स्मृति है
साक़ी बनकर नाच रही;
नहीं-नहीं कवि का हृदयांगण,
यह विरहाकुल मधुशाला। 132

कुचल हसरतें कितनी अपनी,
हाय, बना पाया हाला,
कितने अरमानों को करके
खाक बना पाया प्याला!
पी पीनेवाले चल देंगे,
हाय, न कोई जानेगा,
कितने मन के महल ढहे, तब
खड़ी हुई यह मधुशाला! 133

विश्व, तुम्हारे विषमय जीवन
में ला पाएगी हाला
यदि थोड़ी-सी भी यह मेरी
मदमाती साक़ीबाला,
शून्य तुम्हारी घड़ियाँ कुछ भी
यदि यह गुंजित कर पाई,
जन्म सफल समझेगी अपना
जग में मेरी मधुशाला! 134

बड़े-बड़े नाज़ों से मैंने
पाली है साक़ीबाला
ललित कल्पना का ही इसने
सदा उठाया है प्याला,
मान-दुलारों से ही रखना
इस मेरी सुकुमारी को;
विश्व, तुम्हारे हाथों में अब
सौंप रहा हूँ मधुशाला। 135



परिशिष्ट

यहाँ मैं मधुशाला पर चार नई रुबाइयाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। कविता पाठ करते समय जनता के मनोरंजनार्थ उन्हें सुना दिया करता था। बहुतों ने इन्हें पुस्तक में न पाकर निराशा प्रकट की और अनुरोध किया कि इन्हें भी 'मधुशाला' में सम्मिलित कर दिया जाए। मैं उन्हें इस परिशिष्ट के अन्तर्गत रख रहा हूँ।

'मधुशाला' के बहुत-से पाठक और श्रोता एक समय समझा करते थे, कुछ शायद अब भी समझते हों, कि इसका लेखक दिन-रात मदिरा के नशे में चूर रहता है। वास्तविकता यह है कि 'मदिरा' नामधारी द्रव से मेरा परिचय अक्षरशः बरायनाम है। नशे से इन्कार नहीं करूँगा। जिन्दगी ही एक नशा है। कविता भी एक नशा है। और भी बहुत-से नशे हैं। अपने प्रेमियों का भ्रम दूर करने के लिए, मैंने एक समय एक रुबाई लिखी थी :

स्वयं नहीं पीता, औरों को,
किन्तु पिला देता हाला,
स्वयं नहीं छूता, औरों को,
पर पकड़ा देता प्याला,
पर उपदेश कुशल बहुतेरों
से मैंने यह सीखा है,
स्वयं नहीं जाता, औरों को
पहुँचा देता मधुशाला।

फिर भी बराबर प्रश्न होते रहे, आप पीते नहीं तो आपको मदिरा पर लिखने की प्रेरणा कहाँ से मिलती है ? प्रश्न भोला था, पर था ईमानदार। एक दिन ध्यान आया कि कायस्थों के कुल में जन्मा हूँ, जो पीने के लिए

प्रसिद्ध हैं, या थे। चन्दबरदाई के रासो में कभी पढ़ा एक छप्पय भी याद आया।[1] सोचने लगा, क्या पूर्वजों का किया हुआ मधुपान मुझ पर कोई संस्कार न छोड़ गया होगा ! भोले-भाले लोगों को बहलाने के लिए एक रुबाई लिखी :

मैं कायस्थ कुलोद्भव मेरे
पुरखों ने इतना ढाला,
मेरे तन के लोहू में है
पचहत्तर प्रतिशत हाला,
पुश्तैनी अधिकार मुझे है
मदिरालय के आँगन पर;
मेरे दादों-परदादों के
हाथ बिकी थी मधुशाला।

पर सच तो यह है कि हम लोग अमोढ़ा के कायस्थ हैं जो अपने आचार-विचार के कारण अमोढ़ा के पांडे कहलाते हैं, और जिनके यहाँ यह किंवदती है कि यदि कोई शराब पिएगा तो कोढ़ी हो जाएगा। यह भी नियति का एक व्यंग्य है कि जिन्होंने मदिरा न पीने की इतनी कड़ी प्रतिज्ञा की थी, उनके ही एक वंशज ने मदिरा की इतनी 'वकालत' की। फ्रायड होते तो कहते, 'मधुशाला-गायक' को इसी वंश में उत्पन्न होना था।' 'मधुशाला' की लोकप्रियता मेरे लिए भी एक समस्या है। मैं उसे सैकड़ों-हज़ारों की सभा में सैकड़ों बार सुना चुका हूँ, पर आज भी जब कहीं कविता सुनाने

---

1. पृथ्वीराज रासो के अन्तिम समुल्लास में, शहाबुद्दीन गोरी के दरबार में अन्धे कर दिए गए पृथ्वीराज चौहान जब शब्दबेधी बाण चलाने बैठते हैं, तब चन्दबरदाई उनको कुछ धर्म-नीति का उपदेश करते हैं। एक छप्पय में बताते हैं कि विभिन्न जाति के लोग जब प्रधान बनते हैं तब किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। छप्पय स्मृति से दे रहा हूँ :

खत्रि होय परधान खाय, खंडौ दिखरावै,
साहु होय परधान भरै घर, राज थँभावै,
कायथ को प्रधान अहो निसि रहै पियंतौ,
बम्मन होय प्रधान सदा रक्खवै निश्चिंतौ;
नाई प्रधान नहिं कीजिए, चन्द विरद साँची चवै।
चहुआन बान गुन सट्ठवै, मत चुक्किस मोटै तवै।।

खड़ा होता हूँ तो एक स्वर से जनता 'मधुशाला' की सबसे अधिक माँग करती है। मेरी पुस्तकों में वह सबसे अधिक 'मधुशाला' ही पढ़ती भी है। एक बात सूझी, ऐसा प्रसिद्ध है कि शराब जैसे-जैसे पुरानी होती है वैसे-वैसे ज्यादा नशीली होती जाती है। एक रुबाई लिखी :

बहुतों के सिर चार दिनों तक
चढ़कर उतर गई हाला,
बहुतों के हाथों में दो दिन
छलक-छलक रीता प्याला
पर बढ़ती तासीर सुरा की
साथ समय के, इससे ही
और पुरानी होकर मेरी
और नशीली मधुशाला।

अन्त में एक रुबाई और ! जिस समय मैंने 'मधुशाला' लिखी थी उस समय मेरे जीवन और काव्य के संसार में पुत्र एवं संतान का कोई भावना-केन्द्र नहीं था। अपनी तृष्णा की सीमा बताते हुए मृत्यु के पार गया, पर 'श्राद्ध' तक ही : "प्राण प्रिये, यदि श्राद्ध करो तुम मेरा तो ऐसे करना !"जब स्मृति के आधार और आगे भी दिखलाई पड़े तो तृष्णा ने वहाँ तक भी अपना हाथ फैलाया :

पितृ पक्ष में पुत्र, उठाना
अर्ध्य न कर में, पर प्याला,
बैठ कहीं पर जाना गंगा-
सागर में भरकर हाला;
किसी जगह की मिट्टी भीगे,
तृप्ति मुझे मिल जाएगी
तर्पण अर्पण करना मुझको
पढ़-पढ़ करके 'मधुशाला'।

आशा है, परिशिष्ट की इन पंक्तियों से मधुशाला-प्रेमियों के आनन्द में वृद्धि होगी।

—बच्चन